National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(68): 01-04
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. दीपक त्रिपाठी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,
रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी

Correspondence:
डॉ. दीपक त्रिपाठी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,
रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी

दिनकर-काव्य में मिथकीय तत्त्व

डॉ. दीपक त्रिपाठी

की-वर्ड्स : मिथक, मिथकीय चेतना, मिथकीय चरित्र, ऐतिहासिक, मिथक-तत्त्व, काव्य, साहित्य।

शोध-सार : प्रत्येक भाषा के काव्य में मिथकों का विभिन्न प्रकार से प्रयोग प्रायः देखने-पढ़ने को मिल जाता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध रचनाकार और 'समय सूर्य' कहे जानेवाले कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में मिथकीय चेतना का जैसा कलात्मक और अर्थपूर्ण निदर्शन हुआ है वैसा हिन्दी-काव्य में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। दिनकर के बहुचर्चित काव्य-ग्रन्थ वही हैं जिनमें मिथकीय तत्त्व की प्रधानता है। इस लेख में हम दिनकर जी के बहाने इस मिथकीय काव्य-प्रवृत्ति पर विचार करेंगे; साथ ही यह भी विचार करेंगे कि मिथक किसे कहते हैं, मिथकीय घटनाओं और पात्रों को आधार बनाकर कोई कवि काव्य-सृजन क्यूँ करता है तथा मिथक-आधारित रचनाओं में काव्य-तत्त्वों के प्रस्फुटन एवं कलात्मकता की गुंजाइश और सम्भावना कहाँ तक रहती है। दिनकर जी का काव्य और उसमें मिथकीय उपस्थितियाँ किस प्रकार एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, यही इस शोधालेख का मुख्य उद्देश्य है।

मिथक किसे कहते हैं : सामान्यतः परिभाषा दी जाती है कि मिथक उसे कहते हैं जिसे ऐतिहासिक ढंग से साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित न किया जा सके, लेकिन लोग उस पर इतिहास की तरह ही विश्वास करते हों। साहित्य में मिथक के अतिरिक्त भी बहुत-सारी कथाएँ और मान्यताएँ इस प्रकार बरती जाती हैं जिनके असत्य होने की पर्याप्त गुंजाइश होती है, लेकिन हम उन्हें सत्य मानते हुए पढ़ते हैं और आनन्दित होते हैं। उनके बारे में अधिक न कहते हुए सिर्फ़ इतना संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि काव्यशास्त्र के अन्तर्गत 'काव्य-रूढ़ि' और 'कवि-समय' जैसी प्रवृत्तियाँ इसी प्रकार की संदिग्ध मान्यताएँ और अवधारणाएँ प्रस्तुत करती हैं।

फ़िलहाल, मिथकों को अप्रामाणिक इतिहास के रूप में निरूपित किया जाता है। यहाँ एक परिभाषा विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्यूँकि ये मिथक की प्रचलित मान्यता से कुछ भिन्न है। कालिकाप्रसाद द्वारा सम्पा-दित 'बृहत हिन्दी कोश' में 'मिथक' का अर्थ निर्धारित किया गया है– "प्राचीन पुराकथाओं का तत्त्व जो नवीन स्थितियों में नये अर्थ वहन करे।"[1] यहाँ यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि कालिकाप्रसाद ने मिथक को 'पुराकथाओं का तत्त्व' कहा है, साथ ही ये भी शर्त रख दी है कि 'जो नवीन स्थितियों में नये अर्थ वहन करे'।

कुछ पुराने कोशों, जैसे संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश[2] (वामन शिवराम आप्टे) तथा हिन्दू-धर्मकोश[3] (डॉ. राजबली पाण्डेय) आदि में इस 'मिथक' शब्द की प्रविष्टि नहीं है। वामन शिवराम आप्टे के शब्दकोश में 'मिथ्' शब्द की प्रविष्टि है, लेकिन वो 'मिथक' शब्द के आशय को समझने में सहायक नहीं है। इस क्रम में अँग्रेज़ी की परिभाषा देखना भी उपयुक्त होगा– "Myth : (GK muthas, 'anything uttered by word of mouth') In general a myth is a story which is not 'true' and which involves (as a rule) supernatural beings – or at any rate supra-human beings. Myth is always concerned with creation and explain how something came to exist."[4]

यहाँ स्पष्ट है कि अँग्रेज़ी परम्परा में 'मिथ' (Myth) शब्द को ग्रीक भाषा से उत्पन्न माना जाता है। साथ ही which is not 'true' की शर्त है और supernatural या supra-human beings की भी शर्त लगी हुई है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से मिथक की अवधारणा लगभग स्पष्ट हो जा रही है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो रहा है कि आधुनिक साहित्य में 'मिथक' शब्द की अवधारणा अँग्रेज़ी-साहित्य की अवधारणा के अनुसार है क्यूँकि संस्कृत-परम्परा में इस प्रकार के काव्य का कोई उल्लेख ही नहीं है। भले ही 'मिथ' और 'मिथ्या' शब्द संस्कृत में पहले से उपस्थित थे, लेकिन आधुनिक साहित्य में एक प्रवृत्ति विशेष की तरह इसकी पहचान या मूल्यांकन अँग्रेज़ी-साहित्य और आलोचना के अनुकरण-अनुसरण में किया गया। किसी भी साहित्य में मिथकों को सत्य मानकर उन पर काव्य लिखा गया है या not true मानकर लिखा गया है, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण ये है कि उस काव्य से किस प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति की जा रही है।

हिन्दी-साहित्य और मिथक : हिन्दी-साहित्य में मिथकीय चेतना का पर्याप्त निरूपण हुआ है। यही नहीं कि सिर्फ़ काव्य में ही मिथकों की व्यवस्था देखने को को मिलती है, हिन्दी और सम्पूर्ण विश्व के साहित्य में कथाओं, वृत्तान्तों तथा अन्यान्य कृतियों-विधाओं में भी मिथकीय चरित्रों और घटनाओं का निदर्शन हुआ है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में भी कई गद्य-लेखकों ने 'रामायण' और 'महाभारत' आदि की घटनाओं और पात्रों को आधार बनाकर उपन्यास, कहानियाँ और नाटक आदि लिखे। इस दिशा में नरेन्द्र कोहली और महेन्द्र मधुकर के उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। धर्मवीर भारती जैसे प्रगतिशील साहित्यकार का नाटक 'अन्धा युग' मिथकीय कथानक पर आधारित है और मंचन की दृष्टि से अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। दिनकर जी से इतर भी इस तरह के कई उदाहरण हिन्दी-काव्य में हैं।

काव्य में सीधे-सीधे मिथकीय पृष्ठभूमि पर आधारित कथा या वृत्तान्त आदि का पोषण-पल्लवन तो किया ही जाता है, कभी-कभी यथार्थ और वास्तविक धरातल के विवेचन में मिथकों को कहावत, लोकोक्ति, उपमा अलंकार आदि काव्य-तत्त्वों के माध्यम से भी प्रस्तुत किया जाता है। मिथक-आधारित काव्य-पंक्तियों का प्रयोग अपने तर्कों के समर्थन-संवर्धन हेतु गद्य की विविध विद्याओं में किया जाता है। कई ऐसी कहावतें और शब्द-पद हैं जो मिथकीय कथाओं पर आधारित हैं, जैसे 'भगीरथ प्रयास', 'घर का भेदी लंका ढाये', 'चक्रव्यूह में फँसना', 'चीर-हरण', 'भीष्म-प्रतिज्ञा' आदि।

मिथक-आधारित साहित्य का उद्देश्य : मिथकों पर आधारित साहित्य के उद्देश्यों की पड़ताल करने के क्रम में कुछ अनुमान-आधारित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कोई भी लेखक या कवि जब मिथकीय पात्रों अथवा घटनाओं को आधार बनाकर सृजनरत होता है तो निश्चित रूप से कुछ उद्देश्य उसके मन-मस्तिष्क में रहते होंगे। कुछ उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं–

(क) मिथकीय घटनाओं के जो अर्थ और आशय प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक परिव्याप्त हैं, उनका पुनर्मूल्यांकन अथवा नये सिरे से निरीक्षण-परीक्षण करना।

(ख) प्राचीन रूढ़ियों तथा मान्यताओं से सहमति-असहमति अथवा उसमें शोधन-संशोधन का प्रस्ताव।

(ग) मिथकीय कथाओं, घटनाओं-परिघटनाओं को समकालीन सन्दर्भों में व्याख्यायित करना।

(घ) कतिपय शाश्वत मूल्यों तथा आदर्शों पर पुनः चर्चा करके उन्हें विमर्श के केन्द्र में लाना।

(च) जातीय-राष्ट्रीय संस्कृति और अस्मिता की तलाश में मिथकों का पुनर्सृजन, पुनर्व्याख्या तथा पुनर्प्राप्ति का प्रयास।

उपर्युक्त समस्त बिन्दु एक-दूसरे से बहुत अलग नहीं हैं। ये सब एक ही उद्देश्य के विभिन्न चरण भी कहे जा सकते हैं, जिनके क्रम का संयोजन किसी भी प्रकार से किया जा सकता है। ये समस्त बिन्दु एक ही व्यापक उद्देश्य के 'डोमेन' में अवस्थित विभिन्न 'वैरिएबल' हैं।

अन्तिम बिन्दु में उल्लिखित 'जातीय-राष्ट्रीय संस्कृति और अस्मिता' को जानने-समझने का प्रयास काव्य के अतिरिक्त दिनकर जी की गद्य-कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' में भी दिखायी देता है। इस पुस्तक से यह भी स्पष्ट होता है कि दिनकर जी भारतवर्ष के गौरवशाली और गरिमामयी इतिहास तथा मिथकों को भावनाओं में बहकर महत्त्व नहीं देते, बल्कि तर्कपूर्ण और युक्तियुक्त ढंग से अन्वेषित करते हुए प्रस्तुत करते हैं। वे अतीत के गुण-गायन में हृदय को अकेले नहीं रखते, अपितु बुद्धि का सतत साहचर्य अनिवार्य रूप से उपस्थित रहता है।

मिथक से नवसृजन की सम्भावनाएँ : मिथक-आधारित नवसाहित्य के उद्देश्यों पर विचार करने के पश्चात इस बिन्दु पर भी विचार करना आवश्यक है कि क्या एक व्यवस्थित और व्यापक उद्देश्य निर्धारित कर लेने मात्र से उस परिप्रेक्ष्य में सृजनशीलता और कलात्मकता की भी सम्भावना बन पाती है अथवा नहीं। मिथकीय घटनाओं और पात्रों पर आधारित गद्य-पद्य के सृजन में क्या रचनात्मक सम्भावनाएँ हैं, उन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता–

(अ) मिथकीय घटनाओं और पात्रों के ऐतिहासिक साक्ष्य न होने के कारण रचनाकार के पास गुंजाइश और स्वतन्त्रता होती है कि वो उसमें कुछ नवीन और मौलिक योग-प्रयोग कर सके।

(ब) पात्रों के संवाद और उनकी मनःस्थिति का प्रस्तुतीकरण रचनाकार के उद्देश्य एवं उसकी विचारधारा के अनुरूप होने की सम्भावना बनी रहती है।

(स) प्रायः मिथकीय पात्रों और घटनाओं से पाठक-श्रोता पूर्व-परिचित होते हैं, ऐसी स्थिति में रचनाकार को ये सुविधा रहती है कि उसकी रचना पाठकों और श्रोताओं के समक्ष एकदम अजनबी नहीं होती। यद्यपि इस सुविधा से एक ख़तरा भी उत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी पाठक किसी पात्र अथवा घटना-प्रसंग के प्रति पूर्व-मान्यता या पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते हैं। ऐसी स्थिति में उस मान्यता से भिन्न या विपरीत तथ्य-कथ्य उपस्थित हो जाने पर रचना-सम्प्रेषण में व्यतिरेक या व्यवधान उत्पन्न हो सकता है। रचनाकार अपनी जगह सही होने के बावजूद प्रचलित मान्यता से भिन्न प्रस्तुति देने के कारण उपेक्षित या विवादित हो सकता है।

(द) मिथकीय पृष्ठभूमि पर सृजन-विस्तार के क्रम में भाषा का प्रयोग उस मिथकीय कथा के मूल स्रोत के अनुरूप होगा। इससे वर्तमान की भाषा और शैली तथा शब्दावली को एक नया आयाम और विस्तार मिलता है। दिनकर जी ने भी अपनी मिथक-आधारित रचनाओं के माध्यम से हिन्दी की शब्दावली को विकसित किया। चूँकि मिथकीय पृष्ठभूमि का समस्त स्रोत संस्कृत में ही है इसलिए दिनकर जी की इस काव्य-प्रवृत्ति से हिन्दी की शब्दावली में न सिर्फ़ नये-नये शब्दों का प्रवेश हुआ, बल्कि अपेक्षाकृत कम प्रचलित शब्दों का प्रचलन भी जन सामान्य में बढ़ा।

मिथक और दिनकर का काव्य : अभी तक मिथकों पर आधारित काव्य या साहित्य के उद्देश्य तथा मिथक-आधारित साहित्य में नवसृजन की सम्भावनाओं पर विचार किया गया। अब आवश्यक है कि इन दोनों बिन्दुओं के पक्ष-पोषण में दिनकर-काव्य में कुछ सूत्र तलाश किये जायें।

मिथक-आधारित आधुनिक साहित्य के उद्देश्यों को दिनकर-काव्य में तलाश करने के क्रम में एक-दो उदाहरण समीचीन और पर्याप्त होंगे, क्योंकि दिनकर-काव्य में इस प्रकार के उदाहरण विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। पहला उदाहरण 'रश्मिरथी' से है। यह महाभारत के एक पात्र कर्ण पर आधारित खण्ड-काव्य है, जिसका विवेचन-विश्लेषण करते हुए विजयेन्द्र स्नातक अपने लेख 'रश्मिरथी : एक विश्लेषण' में लिखते हैं– "महाभारत द्वापर युग की रचना है। उस युग में कुल-गोत्र की मर्यादा रूढ़ियों से सम्पृक्त थी। 'रश्मिरथी' आधुनिक युग की कृति है, जिसमें वैयक्तिक गुणों की अवहेलना सम्भव नहीं है। जातिगत ऊँच-नीच का भाव समाज से मिटता जा रहा है और कर्म का गौरव प्रतिष्ठित हो रहा है। 'रश्मिरथी' का कर्ण स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखनेवाला अप्रतिम योद्धा, दानवीर, धर्मवीर, परोपकारी, सहिष्णु, त्यागी नर पुंगव है। उसके व्यक्तित्व के ये गुण इतने उज्ज्वल और दीप्त हैं कि इनके होते आज के युग में कोई उसकी उपेक्षा करने का साहस न करेगा। आज तो समाज से अस्पृश्यता, वर्णसंकरणता आदि का केंचुल उतरता जा रहा है। समग्र मानवीय गुणों के विकास के लिए द्वार खुलते जा रहे हैं। इसलिए कर्ण जैसे तेजस्वी चरित्र का वर्णन करने का मोह प्रत्येक सजग कलाकार में होना स्वाभाविक है, युगबोध के आलोक में कर्ण का भाग्य जगेगा ही क्योंकि आज का युग मानवीय गुणों की पूजा का युग है।"[5]

स्पष्ट है कि विजयेन्द्र स्नातक दिनकर जी के उस उद्देश्य को उद्घाटित करने का प्रयास कर रहे हैं जो उन्होंने कर्ण जैसे मिथकीय पात्र के माध्यम से 'युगबोध' के रूप में प्रस्तुत किया है। कर्ण के जिन गुणों का विजयेन्द्र स्नातक ने उल्लेख किया है, उनके रहते हुए भी कर्ण गुरु-शिष्य परम्परा की विडम्बना, मित्रता के भाव-निर्वहन की दुश्वारियाँ, अविवाहित मातृत्व का शिकार, द्रौपदी-स्वयंवर में दलित होने का दंश-भागी, कुल-गोत्रहीन होने की विसंगति आदि का भी समुच्चय है। इन्हीं प्रकरणों को ध्यान में रखकर दिनकर जी ने कर्ण को 'रश्मिरथी' में एक नायक के रूप में प्रस्तुत किया है।

दूसरा उदाहरण प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' से देखा जा सकता है। "दिनकर जी ने कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर का चरित्र भारतीय संस्कृति, जो आत्मबल को प्रधानता देती है, के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। वे नरसंहार को व्यर्थ बतलाकर आत्मबल से लड़ने की दुहाई देते हैं, किन्तु भीष्म युद्ध की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि आत्मबल अपने स्थान पर है और शक्तिबल अपने स्थान पर। आत्मा का संग्राम ही आत्मबल से जीता जा सकता है; किन्तु जब आततायी तलवार उठाकर सामने आ ही जाता है तब उससे रक्षा करने के लिये शक्ति की ही आवश्यकता होती है। क्योंकि जब हिंस्र पशु घेर लेते हैं तब बलिष्ठ शरीर ही काम आता है और पतित समूह की कुवृत्तियों के सामने तप का वश नहीं चलता।"[6]

अगला उदहारण 'उर्वशी' नामक काव्य-नाटक (गीति नाट्य) से देखा जा सकता है। 'उर्वशी' के उद्देश्य अथवा उसमें छिपे युगानुरूप अर्थ को उद्घाटित करते हुए डॉ. नगेन्द्र अपने आलेख 'उर्वशी' में लिखते हैं– "उर्वशी का पक्ष प्रकृति का पक्ष है– उसके लिए प्रकृति अर्थात ऐन्द्रिय धरातल पर काम-सुख ही पूर्ण सत्य है, उसके आगे कुछ और का अनुसंधान अनावश्यक है। यह प्रकृत आनन्द अर्थात प्रकृति के प्रति पूर्ण आत्मार्पण ही अपने सहज रूप में जीवन की सिद्धि है, सहज का अर्थ है निर्बाध और निष्काम । कामना या वासना से दूषित होकर सहज कामरूप यह अमृत गरल में परिणत हो जाता है, अतः निष्काम भाव से ऐन्द्रिय काम का आनन्द ही, जीवन का चरम साध्य है।"[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिनकर जी 'रश्मिरथी' में यथार्थ और वास्तविकता के धरातल पर सामाजिक व्यवस्था की विद्रूपताओं के परिहार का प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हैं, जबकि 'उर्वशी' में स्त्री-पुरुष के शाश्वत प्रेम-सम्बन्धों की अनिवार्यता पर एक दर्शन की स्थापना कर रहे हैं। इस प्रकार दिनकर जी वेद की एक कथा और महाभारत के एक पात्र को युगानुरूप व्याख्यायित करने का काव्यात्मक उपक्रम

कर रहे हैं। यही नहीं "उर्वशी काव्य में प्राचीन एवं अर्वाचीन भारतीय संस्कृति की झाँकी देखी जा सकती है। वैदिक विधान, आश्रम जीवन, मातृमहिमा, नारी माहात्म्य, मानवत्व की वरीयता, पातिव्रत की प्रशंसा, लोकगीतों के प्रति अनुराग आदि कवि की भारतीय संस्कृति के प्रति व्यापक निष्ठा का प्रमाण है।"[8]

डॉ. रेखा श्रीवास्तव 'रश्मिरथी' को सीधे-सीधे जातीयता से जोड़ते हुए लिखती हैं– "दिनकर की राष्ट्रीय भावना व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक है, जो भारतीयता के प्राचीन आदर्श, विश्व-प्रेम और 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना की कसौटी पर खरी उतरती है। कवि जातीयता की संकुचित विचारधारा को समाज का स्वस्थ स्वरूप नहीं मानता। स्वस्थ एवं सशक्त समाज का निर्माण जाति से चिपके रहनेवाले व्यक्तियों से नहीं, अपितु अपने कर्म, शौर्य एवं शक्ति से अपना मार्ग प्रशस्त करनेवाले व्यक्तियों से होता है। यही विचार 'रश्मिरथी' में सूत-पुत्र कर्ण के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है।"[9]

इस प्रकार हम देखते हैं इस आलेख की शुरूआत में कालिकाप्रसाद के 'मिथक' की जिस परिभाषा का उल्लेख किया गया था वह कविवर दिनकर जी के आशय से एकदम मेल खाती है। दिनकर जी भी मानते हैं कि मिथक का अर्थ और आशय युगानुरूप तथा प्रसंगानुकूल होना चाहिए। संस्कृति के उत्थान हेतु या संस्कृति के संरक्षण हेतु मिथकों की सहायता लेना या उनसे कोई सूत्र निकालना एक उद्देश्य हो सकता है, परन्तु मिथकों से आधुनिक समाज के लिए कोई मूल्य-बोध, कोई आदर्श या किसी आधुनिक समस्या का समाधान निकालने की कोशिश करना एक दूसरी तरह का उद्यम हैं। दिनकर जी जैसे समर्थ कवि ने दोनों उद्देश्यों को एक साथ उत्कृष्ट ढंग से साधा है।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः ये कहा जा सकता है कि दिनकर जी ने अपने युग के अनुरूप आवश्यकताओं को देखते हुए काव्य को सामाजिक जागरण का एक 'टूल' बनाया। समाज को उसकी परम्परा और अतीत से किस प्रकार प्रेरणा लेनी चाहिए और किस प्रकार धूमिल हो रहे चरित्रों तथा पात्रों को फिर से महिमामण्डित करते हुए स्थापित करना चाहिए, दिनकर जी ने इसे व्यावहारिक रूप से करके दिखाया है। 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' जैसी रचनाओं से जहाँ यथार्थपरक विसंगतियों और युग-सापेक्ष संघर्षों को उजागर करने में 'सामाजिक न्याय' के सूत्र तलाश किये गये हैं, वहीं 'उर्वशी' और अन्यान्य रचनाओं के माध्यम से दर्शन और अध्यात्म की चिन्तन-परम्परा को जनता से जोड़ने की कोशिश की गयी है। दिनकर जी ने वर्तमान और भविष्य की सम्भावनाओं की परिकल्पना अतीत की पुनर्व्याख्या के माध्यम से से प्रस्तुत की है। यह परिकल्पना न सिर्फ़ भारतीय है और मौलिक है, बल्कि यह परिकल्पना हमें औपनिवेशिक मानसिकता और दासता से मुक्ति का मार्ग भी दिखाती है। इस प्रकार अपने काव्य में मिथकीय चेतना का सोद्देश्यपूर्ण और सुरुचिपूर्ण प्रयोग करके दिनकर जी ने अतीत और भविष्य को एक साथ संरक्षित किया है।

सन्दर्भ :

1. बृहत हिन्दी कोश, कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय (सम्पा.), ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, चतुर्थ परिवर्धित संस्करण, मार्गशीर्ष संवत 2030 (सन 1973)
2. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2016
3. हिन्दू धर्मकोश, डॉ. राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण 2003
4. Dictionary of Literary Terms & Literary Theory, J. A. Cuddon, Penguin Books, London, England, Ed. 2014
5. दिनकर, सावित्री सिन्हा (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 1970, पृ. 168-169
6. दिनकर और कुरुक्षेत्र, आचार्य रमाशंकर त्रिपाठी, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, संस्करण 1993, पृ. 175
7. दिनकर, सावित्री सिन्हा (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 1970, पृ. 199
8. उर्वशी : एक अध्ययन, डॉ. रवीन्द्र प्रसाद, ए. आर. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृ. 293
9. राष्ट्रकवि दिनकर एवं माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ. रेखा श्रीवास्तव, ए. आर. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृ. 142